मनोज छाबड़ा कृत 'अभी शेष हैं इन्द्रधनुष ' का भाव पक्ष

डॉ. दिव्या सुथार, एम.ए.(हिन्दी), बी.एड., पी–एच.डी.(हिन्दी)

धर्मपत्नी संदीप कुमार जांगड़ा

359 गली न01 दीवान बस्ती

वार्ड न0 12 पेहोवा, कुरुक्षेत्र हरियाणा। 136128

साहित्यकार समाज में रहते हुए समाज उचितानुचित की ओर ध्यान देता है। वह अनुचित का खंडन करते हुए अच्छाइयों का पोषण करता है। लक्ष्य आर्दशात्मक बन जाता है। साहित्यकार आशा–निराशा की अभिव्यक्ति करता है। कथ्य आदर्श और अनादर्श से जुड़े तथ्यों की संतुलित अभिव्यक्ति से जुड़ा होता है।

कथ्य शब्द अत्यंत व्यापक है। इसकी व्यापकता को केंद्रित करके विभिन्न विद्वानों ने पर्यायवाची शब्द और आयाम निर्धारित किए हैं। वर्ण्य, विषय–वस्तु, भावपक्ष और विचार शब्द कथ्य के लिए प्रयोग किए जाते हैं। अर्थ भावना की दृष्टि से तो किसी भी पर्याय का प्रयोग किया जा सकता है। किंतु कविता के लिए विशेषकर कथ्य का प्रयोग होना उचित है। कथ्य जहां एक ओर विषय तो दूसरी और वर्ण्य के अर्थ का संकेत देता है। काव्य में कवि का बोध और संवेदनशीलता परस्पर अविभाज्य रूप में गुम्फित रहते हैं। भोलानाथ तिवारी ने लिखा है–'सुख–दुखात्मक अनुभूति से वेदना उत्पन्न होती है। अतः भावात्मक दृष्टिकोण अथवा बोध की प्रधानता के कारण ही कवि तत्कालीन समाज एवं परिवेश से विविध विषयों का बोध प्राप्त करता है। संवेदना के स्तर भी प्रत्येक युग में भिन्न–भिन्न रहते हैं। यही कारण है कि परिस्थितिवश किसी युग के काव्य में भाव–पक्ष की प्रबलता दृष्टिगत होती है, तो किसी अन्य युग के काव्य में कला–पक्ष की प्रधानता रहती है। किसी युग के काव्य में अंर्तमुखी हो गया है तो किसी युग का कवि बहिर्मुखी है।' [1]

साहित्यकार चाहे किसी भाव की आंतरिक अनुभूतियों की अभिव्यंजना करे, उनमें भी उसके नीरस व्यक्तित्व की झलक विद्यमान रहती है। यद्यपि अनुभूति कवि के अंतःकरण की ही एक प्रक्रिया

[1] संपादक डॉ0 भोला नाथ तिवारी, चित्रमय बालकोश पृ0... 358

है, तथापि उसका संबंध सामाजिक परिवेश से भी है। इतना ही नहीं वह जिन भावनाओं को अपने साहित्य में सर्वोच्च स्थान देता है, वे वस्तुतः उसके व्यक्तित्व अनुभूति ही है।

वर्ण्य से अभिप्राय है– किसी तथ्य का वर्णन जो वर्णन करने योग्य हो अथवा जिसे कवि अपनी रचना के माध्यम से समझ पाया हो तो विस्तार से ब्यान करना चाहता हो। अनावश्यक विस्तार का त्याग एवं वांछनीय को ग्रहण करके ही वर्ण्य विषय की प्रस्तुति में गागर में सागर भरने का सफल प्रयास किया जाता है। विशय का शब्दकोशीय अर्थ है– कोई ऐसी बात जिसके संबंध में कुछ कहा, या सोचा जाये।[2] वस्तु का यही तात्पर्य अमूर्त भावों के मूर्त रूप से है। अतः जिन संवेदनाओं का विचारोपरांत कवि शब्दों का परिधान पहना देता है, वे विषय बन जाती है। विषय वस्तु से ही कथ्य का निर्धारण होता है।

केन्द्रिय भावों से जुड़ी संवेदना को भावपक्ष के अंतर्गत लिया जाता है। कथ्य को भाव पक्ष भी कहा जाता है। भाव के बारे में डॉ0 भोला नाथ तिवारी ने कहा है कि भाव वह है जो मन में महसूस किया जाये। इसलिए भाव पक्ष का सीधा सा अर्थ हुआ–विविध भावों, संवेगों अथवा अनुभूतियो की लामबंदी। भावपक्ष काव्य का अंतरंग पक्ष माना गया है। इसे काव्य की 'आत्मा' कह सकते हैं। भावपक्ष की सर्वश्रेष्ठ परिणती रस निष्पति है। भाव रस–कोटि के चरम पर पहुंच कर ही आस्वाद्य बनते है। फलतः कथ्य के अंतर में भाव रस की ही प्रतिष्ठता होती है। रस निष्पति मुख्यतः भावना के परिपोषण और उसके आस्वादन पर अवलम्बित है। अतः स्पष्ट है कि कविता भावों का सागर है। इन्हीं भावों और संवेगों का समन्वित रूप ही कथ्य कहलाता है।[3]

डॉ मनोज छाबड़ा 'अभी शेष हैं इन्द्रधनुष' काव्य कृति एक ओर हृदय तत्व से जुड़ी भावनाओं को वाणी देती है तो दूसरी और बुद्धि से जुड़ी अनेक विकसनशील भावनाओं को मूर्त रूप प्रदान करने में सक्षम हैं। आज के कवियों की सारी लड़ाई अपनी ही विरासती और संस्कारी प्रवृतियों और परम्परा के प्रति मोहग्रस्त दुर्बलताओं के खिलाफ है– हमारी सबसे बड़ी समस्या यही है कि हमने युद्ध नहीं भोगा है और हम उसके अप्रत्यक्ष दबाव से दूर भी नहीं जा सकते इसीलिए भारतीय लेखक की समस्याएं और उसकी स्थिति किसी भी अमेरीकी या यूरोपिय लेखक से अधिक

[2] संपादक डॉ0 भोला नाथ तिवारी, चित्रमय बालकोश पृ0... 359

[3] संपादक डॉ0 भोला नाथ तिवारी, चित्रमय बालकोश पृ0... 309

कठिन और भयावह है। डॉ मनोज छाबड़ा ''अभी शेष हैं इन्द्रधनुष' की कविताएं व्यक्ति की बुनियादी बेचैनियों से टकराती हैं– व्यक्ति भी आधुनिक व्यक्ति जिसके सामने निरर्थकता और बेकारी की विकराल समस्या है जिसने पाया है कि अब संबंधों में कहीं वह गहरे बंधन सूत्र नहीं है जो बंधन का नहीं अपितु आत्मविश्वास और गहरे सम्पृक्ति बोध का सुख देते थे। बाकी रह गयी है तो महज अस्थिर आवेगों और भावुकताओं की मनोवृतियाँ। जो सामाजिक स्तर पर अपने को एकदम निकम्मा और भोंथरा अनुभव करती हैं। कवि डॉ मनोज छाबड़ा अपनी आंखों के सामने व्यवस्थाओं की शर्मनाक दशा देख रहा है और अपनी मानवीयता की सारी नीवें हिलती हुई पाता है – जो अपने ही संबंधों की छाया में गहन मानसिक संत्रास और दर्दनाक दबावों का अनुभव करता है। जिसके समक्ष बेहद बेईमान और मक्कार व्यवस्था है और जो निरंतर एक पराभव के संघर्ष से गुजर रही है। पाषाण हृदय पर कुकृत्यों का साम्राज्य है। एक उदाहरण देखिए–

'सब कुछ समेट लेने की धुन में

हाथ की सभी अशर्फियाँ लुटा दीं हमने।

हम निकल पड़े

सागर को मथने[4]

अतः इनकी कवितायों में जो दुनिया सामने आती है उस दुनिया में कहीं दीवारें नहीं है, छत नहीं है– वहां केवल टीसती हुई जिजीविषा है– डूबे और कुंठित आत्मविश्वास हैं और अपनी जड़ें कहीं भी न पाने का भयावहबोध है। इस दुनिया के लोग लेकिन सहज ही विसंगतियों को स्वीकार नहीं कर लेते हैं वे उदास होतें हैं, क्रूद होते हैं, आक्रोश व्यक्त करते हैं उत्तेजनाओं में से गुजरते हैं– अपने अन्दर निरंतर एक सुलगती हुई आग महसूस करते हैं और उनकी यह अस्वीकृति ही उनके जिंदा होने को प्रमाणित करती है – यही बेचैनियॉ डॉ मनोज छाबड़ा की चेतना के असली बिंदु उभारती हैं। उदाहरण दृष्टव्य है–

'अपने घर के घड़े में पड़ चुके कीड़े

साँप का कद धारण कर गए

[4] मनोज छाबडा : अभी शेष है इन्द्रधनुष : पृ0 78

सागर कहाँ मथा गया...!

हम फँस गए

साँप से विस्तार पाकर बने

ऑक्टोपस की ज़हरीली बाहों में।[5]

साहित्कार डॉ मनोज छाबड़ा ने 'अभी शेष हैं इन्द्रधनुष' में समाज के प्रति दायित्वों को निभाकर अपने उद्देश्यों की पूर्ति की है। राजनैतिक, धार्मिक, आर्थिक, सांस्कृतिक आदि पृष्ठ भूमि में व्याप्त आधुनिक भाव बोध को केंद्रित करके उपन्यास की रचना की गई है। अनीति की अतिशयता से पनपती अव्यवस्था के प्रति लेखक का सुझाव रहा है। प्रगतिशील चेतना की मनोवृति का हुआ है। यथार्थ–बोध एवं युग बोध की मिश्रित अभिव्यक्ति इस उपन्यास में हुई है। कवि ने विद्रुपताओं को संकीर्ण परिधि से निकालकर व्यापक्ता प्रदान करके यथार्थ – बोधी होने का परिचय दिया है। आर्थिक यथार्थ बोध हो या सामाजिक कवि की मानसिकता में कौरी कल्पना की उड़ान नहीं है।

डॉ मनोज छाबड़ा जमीन से जुड़े यर्थाथवादी कवि माने जा सकते हैं। कवि अपने समकालीन जीवन की समस्त विसंगतियों से जुड़ा हुआ महसूस करता है, यह जुडाव उसे बहुत बेचैन और त्रासद अनुभवों के बीच ला खड़ा करता है। यही कारण है कि उनका समस्त लेखन विसंगतियों और आधुनिक जीवन का खालीपन और मानसिक कष्टों से सम्बद्ध दिखाई देता है। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि कवि मानवीय स्तर पर अपनी सतह को बरकरार रखना चाहते हैं और इसीलिए सुविधाओं के झूठे और आधुनिक समृद्धियों के पीछे छिपी क्रूरताओं को उनकी संवेदना बहुत तीव्रता से महसूस करती है। उनके मनः मष्तिष्क में जो यर्थाथ बोध है वह अपने खिलाफ खड़ी हुई सारी स्थितियों से लड़ाई की तथा उतेजना की मुद्रा में, उनके लेखन में मूर्त होता है, हमें कोई बहुत साफ और स्थूल तौर पर उनकी यर्थाथ सोच के बिंदु समझ नहीं आते लेकिन तमाम दबावों, विडम्बनाओं और व्यवस्थाओं के प्रति किसी न किसी स्तर पर उनका संघर्ष अवश्य पकड़ में आ जाता है। नारी स्वतंत्रय के प्रति यर्थाथ बोध देखिये–

'रात पर

[5] मनोज छाबडा : अभी शेष है इन्द्रधनुष : पृ0 78

चढ़ते है न जाने कितने रंग

रात फिर भी

रात रहती है।

करोड़ों रंगीन–मिज़ाज पुरूष

ऐसी ही रंगीन औरतों के समीप पहुँचते हैं

शिष्ट–सी बदचलनी के साथ

परंतु

थक हार कर भी रात का रंग बदल नहीं पाते।[6]

डॉ मनोज छाबड़ा का कवि अपने परिवेश में खड़ा रहकर और समस्त तकलीफों से गुजरकर भी पलायन की बात नहीं सोचता है क्योंकि वह अपने को परिवेश से अलग कोई विशिष्ट व्यक्ति नहीं मानता है– उसके अनुसार उससे मांगना या तो कायरता है या आदमियता को नकारना है। सच्चा कवि आज पहले की अपेक्षा और भी अधिक अभागा हो गया है क्योंकि उसे उन लोगों के प्रति अपने कवि कर्म में अनुभव की तीव्रता में उत्तरदायी होना पड़ता है, जिन्हें सुविधा पूर्वक जीने की आदत पड़ गई है, जो एक बिस्तर और रजाई के लिए दुनिया का बड़े से बड़ा गुनाह कर सकते हैं और उनके कानों पर अपराध की जूं तक नहीं रेंगती, जो भाषा को तो तर्क–जाल में उलझा सकते हैं, लेकिन संपूर्ण जीवन की कठिन यंत्रणाओं को न तो सह सकते हैं न यह बात उनकी समझ में आती है – बल्कि जिनके लिए यह सब कुछ मजाक है। आज का रचनाकार ऐसे लोगों की क्रूरताओं से भी अपने को पृथक नहीं रख सकता फिर इससे बड़ा नरक और क्या हो सकता है। कविता के माध्यम से कवि ने अपनी पीड़ा को वाणी दी है–

निसंदेह स्वतंत्रता पूर्व के कवियों का दृष्टिकोण स्वतंत्रता और प्रजातंत्र के प्रति बिल्कुल अलग हैं। उनके सामने तब एक लक्ष्य भी था–एक समग्र लक्ष्य–आज़ादी सामने सब कुछ साफ़ था–संघर्ष भी, नैतिकता भी, लेखक की उपलब्धि भी, लेखकीय कर्म की मूल्यवत्ता भी। आज़ादी का मिल जाना उसके संपूर्ण व्यक्तित्व और कृतित्व की सहज उपलब्धि थी। लेकिन विजय के इस उत्साह में वे

[6] ———वही ———पृ0 26

उन अंधेरे कोनों को नहीं देख सके, जो धीरे–धीरे फैल रहे थे और महत्व ग्रहण कर रहे थे। जाहिर है कि नयी पीढ़ी के लिए यह अजूबा था, यह एक आर्कशण भी था और एक सच्चाई भी जिसे वह इंकार नहीं कर सकती थी। उनकी लड़ाई, उनका संघर्ष उनके अपनों से शुरू हो गया। उन्होनें देखा कि शोषक या अपमानकर्ता कोई सात समंदर–पार का व्यक्ति नहीं था।

डॉ मनोज छाबड़ा का रचनाकार सृजन के स्तर पर भी और जीवन के स्तर पर भी हर जगह भागीदार की हैसियत से विद्यमान रहता है। उसकी संचेतना उसे षुतुर्मुगी–प्रवृति से दूर रखती है – हर गलती के प्रति वह तीव्र प्रतिक्रिया देती है– उसके लिए हर अगली कविता एक नया प्रारंभ और झेलने और परिस्थितियों को उनके सच्चे परिपृश्यों में देखने की एक नयी चुनौती है। आज का लेखक अपने को अनेक यंत्रणामय परिस्थितियों में पाता है।

कवि के भीतर की संवेदना तलाषने से पूर्व उनकी कविताओं से गुजरना अधिक आवश्यक हो जाता है क्योंकि कविता में उनकी आकांक्षा की मनः स्थिति के बिंदु ज्यादा संवेगात्मक अभिव्यक्ति के साथ उभरते हैं– कवि अनेक कविताओं में अपने चारों तरफ के संसार के प्रति तीव्र बेचैनियों को अनुभव करते हैं।

'पत्नी ने तुम्हारे नाम की निशानी
रख छोड़ी है अपने माथे पर
और
कैल्शियम की कमी होने के बावजूद
रखे हैं व्रत
तुम्हारे दीघार्यु होने के,
अपने हिस्से का दूध
उड़ेल दिया है बच्ची के मुँह
और चुपचाप सुन ली है तुम्हारी सारी गालियाँ [7]

[7] मनोज छाबडा : अभी शेष है इन्द्रधनुष : पृ0 119

उन्हें सूरज की प्रचंडता में कोई दम नहीं दिखाई देता, उन्हें आकाश का होना भी कोई आत्मविश्वास या सांत्वना नहीं देता, लोग उन्हें जिंदा नहीं लगते हैं– दुनिया से उन्हें खौफ – सा होता है– उनकी कविता की शब्दावली में जो तीखा आवेश है वह उनकी स्थितियों के प्रति गहरी और सघन असंतुष्टि और आक्रोश के कारण है। डॉ मनोज छाबड़ा नास्तिक भाव नहीं रखते, परंतु गली–सड़ी मान्यताओं को स्वीकार भी नहीं करते।

वैयक्तिक विकास की संभवनाएं परम्परागत विद्रूपताओं के तले दफन हो जाती हैं। प्रकृति का सारा तथाकथित प्रशंसनीय और नैसर्गिक सौंदर्य भी आज व्यक्ति को शांति नहीं देता है– उसे उन्मादी और समस्त आवेशों के साथ भी वह अकेला है और रूढ़िवादी परिवेश की विसंगतियों में सांस लेने के लिए विवश है–। लोगों की सहनशीलता पर उसे दुख होता है– उसका स्वतंत्रता बोध बहुत तीव्र है वह अपने प्रतिकूल सारी स्थितियों को समझता है– पहचानता है और प्रतिक्रिया स्वरूप परेशान हो उठता है लेकिन उसका यह बोध नितांत अकेला है और कुछ भी नही कर सकता है। उसका सारा विद्रोह और क्रोध जड़ताओं के प्रति है। रूढ़िवादी समाज के प्रति आक्रोश देखिये–

'शुक्र है!
इन फुटपाथों पर खिड़कियाँ नहीं थी–
जिनके खुले रहने से
सर्द हवा का आने का खतरा हो
खिड़कियाँ नहीं थी–
इसलिए चोर के भीतर घुस आने की
सब कोशिशें
कर दी गई बेकार।
अपने वस्त्रों की आड़ में
नई पीढ़ी को जन्म देते इन लोगों से
सपने छीनकर

निश्चिंत कर दिया गया था।[8]

निश्चित रूप से यह सच है कि नयी पीढ़ी के कवि में इस राजनीतिक आजादी की कोई आंतरिक संगति नहीं है, बाह्य रूप ये वह परेशान ही है– शायद इससे कम परेशान वह कभी भी नहीं होता। वह ज्यादा परेशान भी न होता – यदि वह गुलाम रहता। तब शायद उसकी अनुभूति का, सोचने–समझने का और व्यक्त करने का स्तर कुछ दूसरा होता। यह भी सच है कि गुलामी के दिनों में राष्ट्रीय प्रेम के जो गीत लिखे गये या प्रगतिवाद के नाम पर जो किसान मजदूर की समस्याओं के नारे लगाए गए वह सब एक फंटेस्टिकल मेनियां था। रूढ़िवादी एवं परतंत्र सोच के प्रति कवि ने सर्वत्र आक्रोश जताया है।

आलोच्य कवि डॉ मनोज छाबड़ा ने मनोभावों का सूक्ष्म विश्लेषण किया है। कहीं परंपरागत मूल्य कभी, प्रगतिशील चेतना कहीं शहीद–नमन तो कहीं अहसास की पीड़ा से जुड़ी मनोवृतियों को मूर्त रूप दिया है। तनाव इच्छाहीनता में बदल जाता है क्योंकि निजी अभिशाप के प्रतिकार का अर्थ होता है। कवि द्वारा एक और अन्तर्द्वन्द्व को बहुत ही संवेदनशील बारीकी और गहरी कलात्मकता के साथ उभारा गया है। कवि मूक है इस चुप के पीछे, इस एकाएक सपाट और तटस्थ बेचैनी भरी मनःस्थिति के पीछे एक मनोविज्ञान है जिसे कवि सिंह की सहभागी मर्मी दृष्टि पकड़ लेती है।

'मेरे सपनों की नदी

जीवन की रेत बहा कर ले जाती है

और बदल देती है

बियाबाँ को वनस्पति–भरे जंगल में

इन दरख्तों के साये

काले नहीं होते,

चमकीले होते हैं,

जहाँ कोई शापग्रस्त शिला

[8] ———वही ———पृ0 27

न तो किसी राम की प्रतीक्षा में

निष्प्राण होती है

न ही कोई ध्रुव

अपनी अटलता हेतु

कर रहा होता है तपस्या। [9]

अतः इनके काव्य में जो दुनिया सामने आती है उस दुनिया में कहीं दीवारें नहीं है, छत नहीं है– वहां केवल टीसती हुई जिजीविषा है– डूबे और कुंठित आत्मविश्वास हैं और अपनी जड़ें कहीं भी न पाने का भयावहबोध है। इस दुनिया के लोग लेकिन सहज ही विसंगतियों को स्वीकार नहीं कर लेते हैं वे उदास होतें हैं, क्रूद होते हैं, आक्रोश व्यक्त करते हैं उत्तेजनाओं में से गुजरते हैं– अपने अन्दर निरंतर एक सुलगती हुई आग महसूस करते हैं और उनकी यह अस्वीकृति ही उनके जिंदा होने को प्रमाणित करती है – यही बेचैनियों कवि की चेतना के असली बिंदु उभारती हैं।

कवि डॉ मनोज छाबड़ा को अपने होने को सिद्ध करने की, अपने अस्तित्व की सार्थकता को प्रतिष्ठित करने की तीव्र आकांक्षा है। सारी वैयकित्क बेचैनियों के बीच भी उसे अपने बाहर की सारी विद्रूपताओं का पूरा एहसास है।

कवि डॉ मनोज छाबड़ा का मन अपने समकालीन जीवन की समस्त विसंगतियों से जुड़ा हुआ महसूस करता है, यह जुड़ाव उसे बहुत बेचैन और त्रासद अनुभवों के बीच ला खड़ा करता है। यही कारण है कि उनका समस्त लेखन विसंगतियों और आधुनिक जीवन के खालीपन और मानसिक कष्टों से सम्बद्ध दिखाई देता है। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि डॉ मनोज छाबड़ा के झूठ और आधुनिक समृद्धियों के पीछे छिपी क्रूरताओं को उनकी संवेदना बहुत तीव्रता से महसूस करती है। उनके मनः मस्तिष्क में जो स्वातंत्रय–बोध है वह अपने खिलाफ खड़ी हुई सारी स्थितियों से लड़ाई की तथा उत्तेजना की मुद्रा में, उनके लेखन में मूर्त होता है, हमें कोई बहुत साफ और स्थूल तौर पर उनकी व्यवस्थाओं के प्रति किसी न किसी स्तर पर उनका संघर्ष अवश्य पकड़ में आ जाता है।

[9] ———वही ———पृ0 93

'सर्द रातों ने लिखी है

प्रेम की हर दास्तान

प्यार की तकलीफ़ सहती

एक औरत

सो गई है

वासना मेरी

उदर में

एक सपना बो गई है [10]

डॉ मनोज छाबड़ा का रचनाकार सृजन के स्तर पर भी और जीवन के स्तर भी हर जगह भागीदार की हैसियत से विद्यमान रहता है। उसकी संचेतना उसे शतुरमुर्गी–प्रवृत्ति से दूर रखती है–हर गलत के प्रति वह तीव्र प्रतिक्रिया देती है– उसके लिए हर अगली कविता एक नया प्रारंभ और झेलने और परिस्थितियों को उनके सच्चे परिदृश्यों में देखने की एक नयी चुनौती है। आज का कवि अपने को अनेक यंत्रणाओं परिस्थितियों में पाता है। वह कैरियरिज्म या आर्थिक उपलब्धि या अतिरिक्त सामाजिक प्रतिष्ठा या अतिरिक्त प्रिविलेज को अस्वीकार करता है और अर्थहीन मानता है। इस मनोवृति की सूक्ष्माभिव्यक्ति देखिये– कितनी ही बार

चिड़िया की चोंच द्वारा

खिड़की पर दी गई दस्तक

उन्हें सामाजिक बनाने का

करती है प्रयास

परंतु

दिन ढलने से पहले

[10] ———वही ———पृ0 118

हाथ में गुलेल लिए वे

सीखते हैं उसे साधना। [11]

डॉ मनोज छाबड़ा जमीन से जुड़े साहित्यकार रहे हैं। अतः उनकी आस्था–अनास्था व्यवस्था पर केंन्द्रित है। कवि की अनास्था विद्रोह मुखोंटों और झूठे प्रदर्षन के प्रति है क्योंकि असलियत में उन आवरणों की तह के नीचे एक निहायत पस्त, कायर, परोपजीवी दुखी और निराश व्यक्ति होता है– उनका स्वतंत्रता बोध उसे आलोक मंजूशा को खूब पहचानता है वह जानता है कि उसमें एकद अंधेरा है उसके दरक और शीशे में उल्लू बैठे हैं, चारों और भूखे, बेसब्र, भ्रष्ट, प्रजातांत्रिक खोल ओढे अत्याचारी लोगों की भीड़ है। सूखते पेड़ और बौखलाती नदियां है, चुपके से अनायास अर्थतंत्र के दबाव में छिन जाते स्नेह के टुकड़े भी है। नयी पीढ़ी इस देखने का क्या करे– इस प्रजातंत्र का, इस आजादी का, इस भाईचारे का, उस कागजी कार्यवाही का, बड़ी–बड़ी बहसों और विशाल फाटकों के पीछे भूखे लोगों का वह क्या करे। कवि ने इस पीड़ा को सर्वत्र जताया है। एक उदाहरण देखिये–

'ज़मीन पर मैं था जब

मेरे लिए

आकाश

एक महान कल्पना था

खाई

एकमात्र संभावना थी।

किराये पर रहते मैनें

घर का सपना पाला था

प्रेम की असफलता के बाद

सदैव

परियों से घिरे

[11] मनोज छाबडा : अभी शेष है इन्द्रधनुष : पृ0 29

राजकुमार की–सी चेश्टाएं रची थी। [12]

साफ जाहिर है कि कवि को वर्तमान व्यवस्थाओं और जीवन पद्धतियों के सारे खोखलेपन का एहसास है– और वह एक रचनाकार की ईमानदारी इसी में मानते हैं कि वह इस खोखलेपन को स्वीकार न करे, नकली मुखौटों और लकदक कपड़ों की जमात में शामिल न हों जाए– भीड़ में एक अकेले साहस का भी महत्व होता है– जनता नहीं सुनती, न सुने, राज्य के लिए उसका कोई अर्थ नहीं है, न हो। उसके आंतरिक मन आत्मा में इस सच्चाई को एक संगति है।

एक शब्द में कवि की अनास्था झूठ के किसी भी रूप के प्रति है, सतही प्रदर्शनों के खोखलेपन के प्रति है– स्पष्टतः इस सच्चाई अंतराल में चुनौती है– चुनौती इस बात की है कि हम सच जानते है और उसे धारे रहेंगे। ऊपर से हम जो समर्पित दिखते हैं– वह किसी विवशता के कारण नहीं, वह अपनी अनुभूति को जागृत करके उसे एक सहज प्रत्यक्ष साक्षीयुक्त रूप देने के लिए।

निजी संबंधों से टकराहट कितनी तकलीफ देह होती है उसे कैलाश चन्द्र शर्मा समझते हैं। उनकी लड़ाई अपने ही लोगों से हैं, और जैसा कि कवि मानते हैं यह लड़ाई व्यक्ति को आहत करती है, एक अवसाद ग्रस्त चुप में बंद कर देती है– उनकी कविताओं में इस चुप के भीतर छिपे सत्य को और अंतर्द्वन्द्व को बहुत ही संवेदनशील बारीकी और गहरी कलात्मकता के साथ उभारा गया है– इस चुप के पीछे, इस एकाएक सपाट और तटस्थ बेचैनी भरी मनःस्थिति के पीछे एक मनोविज्ञान है जिसे कवि की सहभागी मर्मी दृष्टि पकड़ लेती है।

जब निकटतम संबंधों में युद्ध छिड़ता है तो यह विरोध एक नैराश्य और अपरिमित इच्छाहीनता में बदल जाता है क्योंकि निजी अभिशाप के प्रतिकार का अर्थ होता है एक असीमित विघटन जिसके लिए साधारणतः मानव हृदय तैयार नहीं कर पाता, अपने को। लेकिन जिनसे हमारा कोई संबंध नहीं होता, उनकी छोटी–सी चुनौती भी हम स्वीकार कर लेते हैं। अपनों से युद्ध हमें उतेजित नहीं करता, चुप करता है। कवि स्वयं ऋण चुकाने के लिए संघर्षरत रहकर संवेदना व्यक्त करता है–

डॉ मनोज छाबड़ा अत्यंत संवेदनषील कवि माने जा सकते हैं। उनकी प्रत्येक कविता में यह संवेदना फूट पड़ी है। संदेश कविता से एक उदाहरण देखिये–

[12] मनोज छाबडा : अभी शेष है इन्द्रधनुष : पृ0 21

समाज का वर्ग विभाजन करने वाली असंगत आर्थिक व्यवस्था पर कवि ने चिंता जताई है संपन्न वर्ग की विकृत मानसिकता का सषक्त चित्रण करती है। वह अपने को सारी सुविधाओं और व्यवस्थाओं में कहीं नहीं पाता है– चरित्र–रहित, नाकारा, प्रदर्शन प्रिय जैसे विश्लेषण उसके दिमाग से सदा चिपके रहते हैं। जबकि, निर्धन व्यक्ति जहां तक आंखें जाती हों– तल्ख लोग और बेहाल दुनिया ही दिखाई देती हो तब वह पैरों तले जमीन नहीं पाएगा। ऐसे में बहुत संभव है कि आदमी निठल्लेपन और निर्लिप्तता को ही अपनी नियति मानकर एक दार्षनिक किस्म के सुख में अपने को केंद्रित कर ले। वह कर्म को अपनी अंतिम संभावना मान बैठता है। संपन्न व्यक्ति ने बहुत ही निर्लिप्त तसल्ली से अपने को सारी तकलीफों से अलग कर लिया है। वह सिर्फ, अपने को ही चाहने और अपनी ही चिंता करने की स्वार्थपरता तक पहुंच गया है। सारे अपमान के बोध को बार–बार नजरअंदाज करके धन संग्रह करते रहना, सारी चिंताओं–दुश्चिंताओं को भुलाकर पड़े–पड़े जुगाली करते रहना यथार्थ जीवन–स्थितियों से उसके पलायन को जाहिर करता है। इस विशमता को कवि ने इस प्रकार दर्शाया है–

बच्चे मर रहे हैं

वे नहीं चौंकते

एक बनावटी निराशा में

चश्मा उतारते हैं

और

अपना परमानेंट अकाउंट नंबर

होठों में बुदबुदाने लगते हैं

चार्टडै अकाउंटेंट से फोन पर बात करते हैं

एक घंटे बाद

उन्हें फिर याद आता है–

बच्चे मारे जा रहे हैं –

बुदबुदाने लगते हैं –

'पता नहीं क्या होगा इस देष का'[13]

निष्कर्षः

सुविधा भोगी व्यक्ति की अमानवीय और पशुवत्, हरकतों तथा विकृतियों के मूल में अपने आर्थिक प्रतिस्पर्धा के संकट की चेतना है– उसे लगता है उसका कोई अधिकार उससे वंचित न रह जाये। कहा जा सकता है कि सिर्फ कुर्त्ते की जेब से सपने निकालने के अतिरिक्त उसकी कोई अहमियत नहीं है अपने होने मात्र को ही सिद्ध करने के लिए ही वह तमाम प्रयासों को सक्रिय बनाता है। उसे अस्तित्व संकट का बोध ही है– सब ओर उसे अपने खिलाफ षड़यंत्र रचते हुए दिखाई देते है। वस्तुतः सारे आर्थिक दुष्चक्र और व्यवस्था की निर्मम सोच के तले भी आम आदमी आक्रोश नहीं व्यक्त करता, किसी सक्रिय उत्तेजना में उठ नहीं खड़ा होता– इसका एकमात्र कारण यह है कि उसके आत्मविश्वास की सारी चूले बुरी तरह हिल उठी हैं।

[13] मनोज छाबडा : अभी शेष है इन्द्रधनुष : पृ0 120